Purva Mimaansa | Refereed | Peer Reviewed
ISSN: 0976-0237 | Volume 15, Issue March 2024 | Impact Factor 5.504

सठोत्तरी हिंदी साहित्य में दलित और मानवाधिकार

लीना गोयल
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, सनातन धर्म महाविद्यालय, अंबाला छावनी

साहित्य समाज का दर्पण होता है। इसलिए साहित्य की परिधि अत्यंत व्यापक होती है। इसके अंतर्गत उपन्यास, कहानी, नाटक, संस्मरण, यात्रा वृतांत, जीवनी, आत्मकथा इत्यादि अनेक विधाएं समाहित होती है। साहित्य की व्यापकता को देखकर ही आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने साहित्य के विषय में कहा था कि - 'साहित्य जनता की चित्तवृत्ति का उचित प्रतिबिंब होता है।' इससे यह निश्चित होता है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्यकार के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।

परिवर्तन जीवन का एक अभिन्न अंग है। यह प्रकृति का नियम है जैसे- जैसे समय में परिवर्तन होता है, परिस्थितियां बदलती है और सामाजिक व्यवस्था में भी परिवर्तन आता रहता है। वर्तमान समाज के तीन वर्ग उच्च वर्ग, मध्य वर्ग और दलित वर्ग इसी परिवर्तन की देन है। 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जब भारत ने अपने एक नए परिवेश में कदम रखा। उस समय से ही सामाजिक व्यवस्था के तीनों वर्गों ने अपनी अपनी पहचान बनानी आरंभ की। भारतीय संविधान में मानव अधिकारों की चर्चा होने लगी तथा स्वतंत्र भारत में मानव को अनेक अधिकार प्रदान किए गए जैसे -जैसे वर्गीय चेतना विकसित हुई, वैसे -वैसे समस्त वर्ग अपने अधिकारों के प्रति सजग होते गए।

भारतीय विकास में हिंदी साहित्य तेज गति से आगे बढ़ने लगा। भारत के हर हिस्से में तथा प्रत्येक वर्ग के चेहरे पर विकास की झलक देखी जा सकती है। परंतु फिर भी समाज में एक वर्ग आज भी ऐसा है जो पुरानी परंपराओं के साथ जी रहा है वह है समाज का दलित वर्ग ।

हिंदी साहित्य में दलित हृदय के उद्गार, उपन्यास, कहानी, नाटक, संस्मरण, रिपोतार्ज इत्यादि अनेक विधाओं में प्रकट होते हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में हमारा वक्तव्य विषय, साठोत्तरी हिंदी साहित्य में दलित और मानवाधिकार है। साहित्य की व्यापकता व समय सीमा को ध्यान में रखते हुए मैंने समस्त हिंदी उपन्यासों के साहित्य संदर्भ में लेने की चेष्टा की है।

कहा जा सकता है कि आधुनिक युग में इस सठोत्तरी साहित्य में हिंदी उपन्यासकारों ने दलितों को अपने अधिकारों के लिए जूझते एवं लड़ते देख, उनकी जिंदगी में अभावों के ढेर तथा यातनाओं का संकट अनुभव किया और संवेदनाओं के स्तर पर उन्हें अभिव्यक्ति दी। इसी यातनापूर्ण जीवन ने दलितों के अहम को ठेस पहुंचाई जिसके कारण वह तिलमिला उठे और अपने अधिकारों के लिए विद्रोह करने पर उतारू हो गए।

नागार्जुन का दलित पात्र बलचनमा तिरस्कार से पीड़ित है। उस दलित के हृदय में अपनी

दयनीय एवं शोषण पूर्ण स्थिति के कारण उफन रहे स्वतंत्रता के अधिकार के प्रति आक्रोश को बड़े सुंदर ढंग से प्रस्तुत करता हुआ साहित्यिक उपन्यासकार कहता है कि -'बेशक मैं गरीब हूं, तेरे पास अपार संपदा है, कुल है, खानदान है, बाप दादा का नाम है आस पड़ोस की पहचान है, जिला जवार में मान है और मेरे पास कुछ भी नहीं है। मगर आखिरी दम तक मैं तेरे खिलाफ डटा रहूंगा,अपनी सारी ताकत तेरे विरोध में लगा दूंगा, मां- बहन को जहर दे दूंगा लेकिन उन्हें तू अपनी रखेल बनाने का सपना कभी पूरा न कर सकेगा।

स्वतंत्र भारत का दलित कृषि पर आधारित है। इस क्षेत्र में लगे किसान एवं मजदूरों मे अपने समानता के अधिकार को प्राप्त करने की इच्छा उजागर होती है। समानता के अधिकार के लिए लड़ने के दो कारण माने जाते है -एक उनका पारिश्रमिक तथा तथा दूसरा उनके साथ किया जाने वाला अमानवीय व्यवहार । साहित्यकारों ने बड़ी गहराई से दलितों की आपदाओं एवं दुख दर्द को समझा है। मैला आंचल नामक उपन्यास में मजदूरों में अपने समानता के अधिकार के लिए लड़ने का स्वर मुखरित होता दिखाई देता है। इस स्वर का ऊंचा करने का श्रेय कालीचरण के व्यक्तित्व को है जो एक समाजवादी नेता है जबवे सुनते हैं कि' मैं आप लोगों के दिल में आग लगा लगाना चाहता हूं। सोए हुओं को जगाना चाहता हूं....आप अपने अधिकारों को पहचाने । कालीचरण गांव में इंकलाब का स्वर फूंकता है, सभाएं आयोजित करता है जिसे सुनकर धरती के सच्चे सपूत धरती के दलित उठ खड़े होते हैं...मेरीगंज में उठते हुए तूफान को दृष्टिगत कर यह अनुमान स्वभाविक है कि ये लोग जाग रहे हैं।

हिंदी साहित्य उपन्यासकारों ने दलित की दशा को प्रस्तुत करते हुए इनमें उठने वाली अधिकार बोध की शक्ति को दर्शाया तथा अधिकारों के लिए जागरूक होने की प्रेरणा भी दी है। दलित वह जनसमूह है जिनमें प्रमुखत: शूद्र, दास, श्रमिक, किसान, सर्वहारा को शामिल किया जाता है। दलित समाज में सबसे अधिक गरीबी का जीवन जीता है। उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं है। जो अयोग्य है, जो घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। निर्धनता, अशिक्षा, निम्न जीवन स्तर इसके लक्षण माने जाते हैं। क्षुद्र चरित्र, निम्न नैतिकता, मद्यपान अपराध, अयोग्यता, बुद्धिहीनता, आलस्य, आकांक्षा का अभाव दलितों में पाया जाता है"।

दलित इसलिए भी दलित हैं क्योंकि उनकी शक्ति निम्न होती है। वह किसी का शोषण नहीं कर सकता। वह बुद्धिहीन और अयोग्य होने के कारण सदैव से ही उच्च वर्ग के समक्ष नतमस्तक होता आया है, परंतु स्वतंत्र भारत में ऐसा नहीं है। दलित जिसे अपना भाग्य समझकर स्वीकार कर लेता था। आज वर्तमान में वह सजग हो अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हैं।हिंदी साहित्यकार नरेंद्र मोहन ने दलितों के अधिकारों के प्रति जागरूकता के संबंध में कहा था - "स्वतंत्रता प्राप्ति महज एक घटना नही होती, यह उस देश के लोगों की अदम्य मुक्ति, कामना, संघर्ष और सामूहिक चेतना का प्रतिफल होती है। स्वतंत्रता के पीछे एक लंबे संघर्ष का इतिहास रहता है और यह संघर्ष उस देश की मानसिकता को एक नया अर्थ और अधिकार का आभास देता है।

साठोत्तरी हिंदी साहित्य में दलितों का मानवाधिकारों के प्रति यह अभास एक तेज आंधी के समान है, इस आंधी के समाज में अनेक परिवर्तन होते हैं तथा समस्त परिवेश कांप उठता है । दलितों के जीवन में अधिकारों की आंधी आक्रोश को उत्पन्न कर देती है। तब वह जीवन को बदलने की चेष्टा करता है स्वतंत्र भारतीय संविधान द्वारा दिए गए अनेक मानवाधिकारों के लिए यह आंदोलन छेड़ता है। प्रसिद्ध उपन्यासकार डॉ रागेय राघव ने समाज के इन्ही मानवाधिकारों जैसे समानता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, धार्मिक एवं आर्थिक अधिकार, स्वतंत्र बोलने का अधिकार इत्यादि पर बल देते हुए लिखा है कि - "भारतीय समाज में निरंतर वर्ग संघर्ष होता रहा है, किंतु उसका स्पष्ट स्वरूप वर्ग -संघर्ष के रूप में भारत में प्रकट हुआ है।

अलग अलग वैतरणी में दलितों में अधिकार प्रवृत्ति पारिश्रमिक के फल स्वरुप है। ठाकुर जगजीत सिंह अपने हलवाहे झिनकु को फटकारते ही नहीं खूब पीटते भी हैं। बेचारा झिनकू मार सहकर साफ -साफ कहता है - "और मारो बाबू और मारो मार मार के जान ले लो। लेकिन हम एक बार नहीं सौ बार कह रहे हैं कि हम बिना रोजीना बन्नी के काम नहीं करेंगे।"

झिनकू के इन शब्दों में आर्थिक स्वतंत्रता के अधिकार की भावना को भली भांति समझा जा सकता है। यहां लेखक ने युगों से पीड़ित दलितों की आक्रोश पूर्ण भावनाओं को झिनकू के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

उपन्यासकार रामदरश मिश्रा ने भी ज़मीदार महीप सिंह के अत्याचारों से तंग आए जगपतिया के मन में अधिकारो के लिए उत्पन्न विद्रोह को स्पष्ट किया है। जमीदार महीप सिंह जो अपने नौकरों को मजदूरी तक नहीं देता, उनका अहम जिम्मेदारी टूटने पर भी नहीं टूट पा रहा। नौकर रामपतिया ने तो कहीं और नौकरी कर ली तथा जगपतिया जो बीमारी के कारण काम पर नहीं आया था, उसकी गालियों, मुक्को, लातों से सेवा हुई। इससे दलित जगपतिया की वेदना कराह उठी तथा वह कहने लगा-" बबुआ गाली दे लीजिए यह तो शोभा है आप लोगों की, लेकिन यह सही है कि आपके यहां हमारा खानदान की परवरिस नहीं हो सकती। कितने महीने हो गए मुझे एक पाई भी नहीं मिली। एक मेरा ही पेट नहीं है न, कि आपके यहां इसे जिया लूं । घर के लोग क्या खाएंगे ।

इसी प्रकार कह जगपतिया ने नौकरी छोड़ दी । जगपतिया का यह फैसला दलितों के स्वतंत्र मनवाधिकारों के प्रति जागरूकता को दर्शाता है।बरसोवा का बिल्लू मजदूरों के विद्रोह के कारण दुखी है, आज मजदूरों का अधिकार बोध जाग रहा है, बेगार लेना तथा उन्हें तंग कर पाना अब संभव नहीं रह गया है। मजदूरों के इस अधिकार बोध की विवेचना करता हुआ विट्ठल कहता है कि - आजकल नौकर मालिक हो गया है। साला खाना दो, कपड़ा दो, रहने कू मकान बी दो मगर काम के नाम पर मौत आएगा। शताब्दीयो तक पराधीन रहने वाले दलित यदि ऐसा व्यवहार करें तो सामंती प्रवृत्ति के मालिकों को दुख होना स्वभाविक ही है।

दलितों के चेहरों पर बदलाव के चिन्ह देखकर भूमिपतियों के कसे हुए तेवर ढीले होने लगते हैं। दलित का यह उभार जहां ईश्वर, भाग्य, स्वामी भक्ति आदि के आगे प्रश्नचिन्ह लगाता है, वही

सत्य, न्याय और अधिकार के लिए जूझ सकने की शक्ति प्रदान करता है। दलित एकजुट होकर अधिकारों के लिए लड़ने की आवश्यकता को तीव्रता से अनुभव करते हुए कहता है कि गरीबी और जहालत जहालत को प्रश्रय देने वाली व्यवस्था ढ़हकर रहेगी - "दरार पड़ी दीवार यह गिरेगी। इसे गिरने दो । यह उच्च वर्गीय समाज कब तक टिका रहेगा। यह आशा करना मूर्खता है कि भूखे और असंतृप्त इंसानों की आत्मा कभी विद्रोह न करेगी। अब यह सहन नहीं हो सकता की मजदूर के खून पसीने पर उच्च वर्ग ऐश करें।" आधा गांव नामक उपन्यास में यह प्रवृत्ति स्पष्ट है। लेकर कहता है कि खून पसीना एक करें हम - मज़दूर लोग, और मौज उड़ाए मिल मालिक ।

अधिकारों का हनन करने वाले शासकों के अत्याचारों को दूर करने का एक रास्ता है कि सर्वहारा ईट का जवाब पत्थर से देना सीख लें, क्योंकि वर्तमान दलित निरंतर उस पर होने वाले अत्याचारों से तंग आ चुका है। अब तो वह अपने विरुद्ध किसी वार्ता को सुन लेने मात्र से ही उसका जवाब देने को आतुर होता है। बस्तर जिले के दलित अपने मानवाधिकारों को पहचान गए हैं। यह उनके आक्रोश में व्यक्त होता है ये कहते हैं कि - "राजा भले ही गौरो से डर जाए,हम नहीं डरेंगे, यदि वे हमारे सब अधिकार छीनने पर उतारू है तो हम भी चीते के पंजे हैं, उन्हें नोच खाएंगे।"

हिंदी साहित्य जीवन की इस वास्तविकता से अवगत कराता है कि पीड़ा का अनुभव मनुष्य को अधिकारों के प्रति सजग करता है। वह दलितों को भी उत्थान कार्य करने की प्रेरणा देता है। उपन्यासकार देवेंद्र सत्यार्थी का उपन्यास' रथ के पहिए' दलितों की प्रेरणा को व्यक्त करते हुए कहता है कि करजिया गांव का मालगुजार धनपाल अपने मजदूरों से बेगार लेता है। इसी कारण पीड़ित मजदूरों ने बार बगावत कर दी। अब उनमें एक नई जागृति आ चुकी थी। अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए सभी मजदूरों ने काम पर जाने से इंकार कर दिया। जब धनपाल अपने स्वार्थ पूर्ति के लिए मजदूरों को बुलाया तो सबने जाने से इनकार किया और अपने अधिकारों को जताते हुए स्पष्ट रूप से कहा - हाकां हम जरूर दे देंगे परंतु मजदूरी हम पहले रखा लेंगे ।

सठोत्तरी हिंदी साहित्य की महत्वपूर्ण विधा उपन्यासों के लेखकों ने अपने उपन्यासों में ग्रामीण जीवन में बसने वाले दलितों यशवंत, नीरू, दुर्गा, पन्ना, मल्लारी, हिरना,सुगनी, कालीचरण,हीत लाल, बैकुंठी, मोहन माझी, प्यारी इत्यादि पात्रों की सहायता से न केवल दलितों के अधिकार हनन का मार्मिक चित्रण किया अपितु दलितों की इस अत्याचार के विरुद्ध हुई मानवाधिकार सजगता का भी सफल उद्घाटन किया । जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य के उपन्यासों के उपन्यासकार दलितों और मानवाधिकार के बीच की कड़ी को जोड़ने में सफल हुए हैं । अब दलित वर्ग अपने अधिकारों को पहचानने लगा है तथा इस इनकी प्राप्ति के लिए शोषण विहीन समाज की स्थापना के लिए निडरता से आगे बढ़ रहा है।